संविधान...

अधिकारों की आवाज़ ऊँची, कर्तव्यों की आवाज़ इतनी धीमी क्यों?

भारत का संविधान केवल कुछ पन्नों पर लिखे नियमों का संग्रह नहीं, बल्कि उस विश्वास का दस्तावेज़ है, जिसमें एक देश ने अपने नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता, न्याय और गरिमा के साथ जीने का सपना दिया। 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा ने भारतीय संविधान को अंगीकृत किया और 26 जनवरी 1950 को यह देश में लागू हुआ। हर वर्ष संविधान दिवस हमें उन मूल्यों की याद दिलाता है, जिनके सहारे भारत ने लोकतंत्र की अपनी यात्रा शुरू की।

लेकिन आज जब हम संविधान की बात करते हैं, तो एक सवाल मन में ज़रूर उठता है—क्या हम संविधान को केवल याद करते हैं, या उसके मूल भाव को अपने जीवन में भी अपनाते हैं?

आज का समाज अधिकारों को लेकर पहले से अधिक जागरूक है। सोशल मीडिया से लेकर सार्वजनिक मंचों तक हर कोई अपने अधिकारों की बात करता है। यह अच्छी बात है, क्योंकि जागरूक नागरिक ही लोकतंत्र की ताकत होते हैं। मगर इसी जागरूकता के बीच कहीं हमारे कर्तव्य, हमारी जिम्मेदारियां और दूसरों के प्रति हमारा सम्मान पीछे तो नहीं छूट रहे? अधिकारों की मांग करते समय हम अक्सर भूल जाते हैं कि एक जिम्मेदार समाज केवल अपने लिए न्याय मांगने से नहीं, दूसरों को न्याय देने से भी बनता है।

आज किसी छोटी-सी बात पर विवाद हो जाए, तो हम कानून, नियम और अधिकारों का हवाला देने लगते हैं। सड़क पर यातायात नियम तोड़ते समय हमें सुविधा याद रहती है, नियम नहीं। सार्वजनिक स्थानों पर गंदगी फैलाते समय हम स्वच्छता के नारों को भूल जाते हैं। किसी कमजोर, गरीब या जरूरतमंद व्यक्ति के साथ व्यवहार करते समय हमारी संवेदनशीलता कई बार हमारे ही शब्दों के बोझ तले दब जाती है। शायद संविधान की सबसे बड़ी परीक्षा संसद या अदालत में नहीं, बल्कि हमारे रोजमर्रा के व्यवहार में होती है।

संविधान ने हमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी है, लेकिन क्या स्वतंत्रता का अर्थ किसी की गरिमा को ठेस पहुंचाना है? क्या अपनी बात कहने का अधिकार दूसरों की बात सुनने की जिम्मेदारी से अलग हो सकता है? आज सोशल मीडिया पर असहमति को कई बार दुश्मनी में बदलते देर नहीं लगती। विचारों का विरोध व्यक्ति के अपमान में बदल जाता है। हम चाहते हैं कि हमारी बात सुनी जाए, लेकिन दूसरों की बात सुनने का धैर्य धीरे-धीरे कम होता जा रहा है।

समानता का सिद्धांत भी केवल भाषणों में नहीं, व्यवहार में दिखाई देना चाहिए। किसी व्यक्ति की पहचान उसके कपड़ों, भाषा, आर्थिक स्थिति, जाति, धर्म या पद से तय करना हमारे सामाजिक विवेक की कमजोरी है। समानता का अर्थ सभी को एक जैसा बना देना नहीं, बल्कि सभी को सम्मान और अवसर देना है। जब किसी गरीब की आवाज़ को केवल इसलिए अनसुना कर दिया जाता है कि उसके पास प्रभाव या संसाधन नहीं हैं, तब हमें अपने समाज के भीतर मौजूद असमानताओं पर विचार करना चाहिए।

संविधान हमें न्याय की भावना देता है, लेकिन न्याय केवल फैसला सुनाने का नाम नहीं है। किसी के साथ गलत होते देखकर चुप रहना, किसी की मजबूरी का मजाक बनाना, किसी जरूरतमंद को उसकी स्थिति के कारण छोटा समझना भी हमारे सामाजिक व्यवहार पर प्रश्न खड़े करता है। न्याय का भाव तब जीवित होता है, जब हम अपने आसपास किसी अन्याय को देखकर उसे सामान्य मानने से इनकार करते हैं।

डॉ. भीमराव आंबेडकर ने संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके विचारों में सामाजिक समानता, शिक्षा, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा का विशेष महत्व था। उनकी दृष्टि में लोकतंत्र केवल शासन की व्यवस्था नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन में समानता और भाईचारे की भावना भी था। उनके विचार आज भी हमें यह समझने का अवसर देते हैं कि किसी राष्ट्र की प्रगति केवल इमारतों, तकनीक और आर्थिक उपलब्धियों से नहीं, बल्कि उसके नागरिकों के सम्मान और अवसरों से भी मापी जाती है।

आज हम विकास, आधुनिकता और भविष्य की बात करते हैं। नई तकनीक, डिजिटल सुविधाएं, शिक्षा, रोजगार और आर्थिक प्रगति हमारे देश की नई दिशा दे रहे हैं। लेकिन इस विकास के बीच हमें यह भी सुनिश्चित करना होगा कि कोई व्यक्ति केवल अपनी आर्थिक कमजोरी के कारण सम्मान से वंचित न हो, कोई बच्चा अवसरों से दूर न रहे और कोई महिला अपने अधिकारों के लिए भय में न जीए। विकास तभी सार्थक है, जब उसका लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुंचे।

संविधान दिवस पर प्रस्तावना पढ़ना, कार्यक्रम आयोजित करना, प्रतियोगिताएं करना और तस्वीरें साझा करना अपनी जगह महत्वपूर्ण है। ये गतिविधियां जागरूकता बढ़ाती हैं। मगर जागरूकता का असली अर्थ तब पूरा होता है, जब उसका असर हमारे आचरण पर दिखाई देता है। यदि हम प्रस्तावना में लिखे न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के शब्दों को पढ़कर भी अपने व्यवहार में भेदभाव, असहिष्णुता और असम्मान बनाए रखते हैं, तो हमें अपने भीतर झांकने की जरूरत है।

एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए हमेशा बड़े काम करना जरूरी नहीं। अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से पालन करना, नियमों का सम्मान करना, दूसरों की गरिमा का ध्यान रखना, जरूरतमंद की मदद करना और अपने आसपास सकारात्मक बदलाव लाने का प्रयास करना भी लोकतंत्र को मजबूत बनाता है। देश केवल सरकारों से नहीं बनता, देश नागरिकों की सोच, मेहनत और संवेदनशीलता से भी बनता है।

संविधान हमें अधिकार देता है, लेकिन साथ ही हमें यह अवसर भी देता है कि हम अपने देश को अधिक न्यायपूर्ण, संवेदनशील और मानवीय बना सकें। आज आवश्यकता केवल संविधान को पढ़ने की नहीं, बल्कि उसके मूल्यों को जीने की है। क्योंकि संविधान की असली ताकत उसकी किताब के पन्नों में नहीं, उन नागरिकों के व्यवहार में दिखाई देती है, जो दूसरों के अधिकारों का सम्मान करते हुए अपने कर्तव्यों को निभाते हैं। लोकतंत्र तब मजबूत होता है, जब अधिकारों की आवाज़ के साथ कर्तव्यों की जिम्मेदारी भी सुनाई देती है।



गंगा पाण्डेय, बाढ़, पटना

काग़ज़ी एहसास कुछ अनकहे जज़्बात... कुछ अनसुनी दास्तानें

पुस्तक समीक्षा



कुछ पुस्तकें केवल पढ़ी नहीं जातीं, बल्कि अपने भीतर महसूस की जाती हैं। 'काग़ज़ी एहसास' ऐसी ही एक भावनात्मक और संवेदनशील काव्य-कृति है, जिसमें प्रेम, विरह, स्मृतियाँ, रिश्तों की जटिलताएँ, स्त्री-अस्मिता, आत्मसम्मान और सामाजिक विसंगतियों को बेहद प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।



लेखिका ससया ने अपनी रचनाओं के माध्यम से मानवीय मन की उन भावनाओं को शब्द दिए हैं, जिन्हें अक्सर व्यक्ति अपने भीतर ही दबाकर रखता है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें प्रेम केवल आकर्षण या समर्पण तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके साथ आत्मसम्मान, स्वतंत्रता, विश्वास और अपनी पहचान बनाए रखने का संदेश भी जुड़ा हुआ है।

पुस्तक की शुरुआती कविताओं में प्रेम की कोमलता, प्रतीक्षा, आकर्षण और विरह की गहरी अनुभूति देखने को मिलती है। 'आग़ोश-ए-इश्क़', 'तू कहे तो इश्क़ हो' और 'मयार-ए-वफ़ा' जैसी रचनाएँ प्रेम के अलग-अलग रंगों को सामने लाती हैं। वहीं 'उम्मीद का एक क़तरा' पाठक को निराशा के बीच आशा, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देती है।

इस संग्रह का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष स्त्री-जीवन और स्त्री-अस्तित्व की अभिव्यक्ति है। 'आईने से एक मुक़ालमा — तुम आज भी खूबसूरत हो' में लेखिका ने उम्र, शारीरिक बदलाव, जिम्मेदारियों और समाज की सौंदर्य संबंधी धारणाओं के बीच उलझी स्त्री को आत्मस्वीकृति का संदेश दिया है। 'इंसान होना पाठ्यक्रम में नहीं था' और 'आखिर क्यों? — एक औरत की बग़ावत, अपने वजूद के नाम' जैसी कविताएँ सामाजिक दोहरे मापदंडों, लैंगिक असमानता और स्त्री की स्वतंत्रता पर लगाए जाने वाले प्रतिबंधों पर गंभीर प्रश्न उठाती हैं।

विशेष रूप से 'सीता और द्रौपदी' रचना उल्लेखनीय है। इसमें पौराणिक स्त्री पात्रों के माध्यम से वर्तमान समाज की मानसिकता, स्त्री के अधिकार, निर्णय लेने की स्वतंत्रता और समानता की आवश्यकता को प्रभावशाली संवादों में प्रस्तुत किया गया है। लेखिका का संदेश स्पष्ट है कि स्त्री को केवल देवी के रूप में पूजना पर्याप्त नहीं, बल्कि एक मनुष्य के रूप में उसके अधिकारों और भावनाओं का सम्मान करना भी आवश्यक है।

लेखिका: Siyaa (सौमिता सेन)

प्रकाशन: शिवोहम पब्लिकेशन हाउस

नकारात्मकता अवसाद की जड़, दोनों से बाहर निकलिए

डॉ. सुरेन्द्र मीणा





जीवन में परिस्थितियाँ हमेशा हमारे अनुकूल नहीं होतीं। कभी असफलता, कभी अपनों की उपेक्षा, कभी आर्थिक कठिनाइयाँ तो कभी अपेक्षाओं का बोझ मन को निराश कर देता है। ऐसे समय में मन में नकारात्मक विचारों का जन्म होना स्वाभाविक है। लेकिन जब नकारात्मकता हमारे सोचने, समझने और निर्णय लेने की क्षमता पर हावी होने लगती है, तब यह मानसिक शांति और जीवन की सहजता को प्रभावित करने लगती है।

नकारात्मकता अवसाद का एक कारण बन सकती है, हालांकि अवसाद के पीछे अनेक मानसिक, शारीरिक और सामाजिक कारण भी हो सकते हैं। इसलिए नकारात्मक विचारों को पहचानना और समय रहते उनसे बाहर निकलने का प्रयास करना आवश्यक है। एक विद्यार्थी परीक्षा में असफल होने पर यह सोच सकता है कि वह जीवन में कभी सफल नहीं हो पाएगा। यदि वह अपनी असफलता को सीखने का अवसर मानने के बजाय स्वयं को अयोग्य समझने लगे, तो उसका आत्मविश्वास कमजोर होने लगता है। इसके विपरीत, यदि वह अपनी गलतियों को पहचानकर दोबारा प्रयास करता है, तो वही असफलता उसके भविष्य की सफलता का आधार बन सकती है।

नकारात्मकता से बाहर निकलने का पहला कदम है अपने विचारों को पहचानना। प्रत्येक कठिन परिस्थिति में स्वयं से पूछिए—क्या मेरी सोच वास्तविकता पर आधारित है या मैं आशंकाओं के कारण परेशान हूँ? हर समस्या का समाधान तत्काल नहीं मिलता, लेकिन धैर्य और निरंतर प्रयास से रास्ते अवश्य खुलते हैं।

नियमित दिनचर्या, पर्याप्त नींद, शारीरिक गतिविधि, प्रकृति के साथ समय बिताना और प्रियजनों से संवाद करना मन को संतुलित रखने में सहायक हो सकता है। अपनी छोटी-छोटी उपलब्धियों को स्वीकार कीजिए और दूसरों से तुलना करने के बजाय स्वयं के विकास पर ध्यान दीजिए। यदि निराशा लंबे समय तक बनी रहे, दैनिक जीवन प्रभावित होने लगे या मन में लगातार उदासी और निरर्थकता का भाव रहे, तो इसे केवल नकारात्मक सोच मानकर अनदेखा न करें। किसी विश्वसनीय व्यक्ति से बात करें और मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ की सहायता लेने में संकोच न करें। अवसाद एक उपचार योग्य मानसिक स्वास्थ्य समस्या है।

जीवन की कठिनाइयाँ हमारी पूरी पहचान नहीं हैं। नकारात्मक विचारों को अपनी नियति मत बनने दीजिए। परिस्थितियाँ बदलने में समय लग सकता है, लेकिन सही दृष्टिकोण, सहयोग और निरंतर प्रयास से जीवन में नई संभावनाओं के द्वार खुल सकते हैं।

शरारती होते हैं बंदर

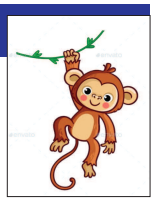

मेरे घर के बगल में अपना एक छोटा सा बागीचा है। उसमे आम अमरुद अनार के पेड़ों के साथ अड़हूल कनईल जासमीन रातरानी का भी पेड़ लगे हुए हैं।

मेरे बागीचे में जब भी अमरूद आम और अनार के पेड़ पर फल लगते हैं तो बंदरों का झुंड आकर मेरे बागीचे के अमरुद आम और अनार कच्चा ही काट काट कर तहस नहस कर देते हैं। बंदर भगाने से नहीं भागते हैं अगर उनको भगाने जाओ तो वह हमें ही काटने को दौड़ा लेते हैं।

एक रोज हमने अपनी परेशानी अपने एक किसान मित्र से बताई तो उसने कहा अब जब भी बंदर बागीचे में आए तो तुरंत एक खाली टीन का डब्बा लेकर डंडा से जोर जोर से उसे बजाना देखना बंदर पेड़ के पास नहीं आएंगे। अगर इससे भी बंदर न भागें तो बाजार से पटाखे खरीदकर घर में रख लेना और जब बंदर आएं तो उसे छोड़ना बंदर पटाखे की आवाज सुनकर दूर भाग जाएंगे और फलों को नुकसान नहीं कर पाएंगे।

मैंने मित्र के अनुसार वैसा ही किया अब बंदर टीन के डिब्बे की आवाज सुनकर और पटाखे की आवाज सुनकर मेरे बागीचे में नहीं आते हैं।

बद्री प्रसाद वर्मा अनजान
गल्ला मंडी गोलाबाजार
273408
गोरखपुर उ. प्र.
मोबाइल 6394878596

बदलते पारिवारिक परिवेश में लाड़-प्यार, अनुशासन और जिम्मेदारी के बीच बिगड़ता संतुलन

बच्चों की हर जिद पूरी कर रहे हैं माता-पिता

लेकिन क्या उन्हें जिम्मेदार इंसान भी बना रहे हैं?

आज के समय में बच्चों की परवरिश पहले से कहीं अधिक सुविधाजनक हो गई है, लेकिन शायद पहले से कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण भी। माता-पिता बच्चों की हर छोटी-बड़ी जरूरत पूरी करने के लिए दिन-रात मेहनत करते हैं। उनके लिए अच्छे स्कूल, महंगे कपड़े, आधुनिक गैजेट, बेहतरीन कोचिंग और मनोरंजन के तमाम साधन जुटाए जाते हैं। बच्चों को किसी चीज की कमी न रहे, इसके लिए माता-पिता अपनी इच्छाओं तक का त्याग कर देते हैं। लेकिन इस भागदौड़ में एक महत्वपूर्ण सवाल पीछे छूटता जा रहा है—क्या हम बच्चों को सुविधासंपन्न बना रहे हैं या जिम्मेदार भी?



आज घरों में बच्चों के लिए सुविधाओं की कोई कमी नहीं है, लेकिन जिम्मेदारियों का स्थान धीरे-धीरे खाली होता जा रहा है। जिस उम्र में बच्चे अपने छोटे-छोटे काम स्वयं कर सकते हैं, उस उम्र में भी माता-पिता उनके पीछे खड़े दिखाई देते हैं। स्कूल बैग तैयार करना हो, पानी की बोतल भरनी हो, कमरे को व्यवस्थित करना हो या अपनी गलती स्वीकार करनी हो, हर काम में माता-पिता की भूमिका जरूरत से ज्यादा बढ़ गई है। कभी-कभी लगता है कि बच्चे बड़े हो रहे हैं, लेकिन उनके साथ-साथ उनकी जिम्मेदारियां नहीं बढ़ रही हैं।

सुविधा के नाम पर छिनता बचपन का संघर्ष-एक समय था जब बच्चे अपनी साइकिल स्वयं ठीक करवाते थे, स्कूल की तैयारी खुद करते थे, घर के छोटे-मोटे कामों में हाथ बंटाते थे और अपनी जरूरतों के लिए इंतजार करना जानते थे। आज स्थिति बदल गई है। बच्चे की इच्छा व्यक्त होते ही उसे पूरा करने की कोशिश शुरू हो जाती है।

मोबाइल चाहिए तो मोबाइल, नया गेम चाहिए तो गेम, महंगे जूते चाहिए तो जूते। कई बार माता-पिता अपनी आर्थिक परिस्थितियों से समझौता करके भी बच्चों की मांग पूरी करते हैं।

समस्या वस्तुओं के मिलने में नहीं, बल्कि उनके पीछे छिपे संदेश में है। जब बच्चा बिना प्रयास के सब कुछ प्राप्त करने लगता है, तो धीरे-धीरे उसे चीजों का मूल्य समझ में आना बंद हो जाता है। जिस वस्तु को पाने के लिए कभी महीनों इंतजार करना पड़ता था, आज वह कुछ मिनटों में उपलब्ध हो जाती है। परिणाम यह है कि बच्चों में धैर्य, श्रम और संतोष जैसे जीवन-मूल्यों का विकास प्रभावित हो रहा है।

माता-पिता बन रहे हैं बच्चों के निजी प्रबंधक-आज कई माता-पिता बच्चों की पढ़ाई से लेकर उनके सामाजिक संबंधों तक हर चीज का प्रबंधन स्वयं करने लगे हैं। बच्चा होमवर्क भूल जाए तो माता-पिता परेशान, परीक्षा में कम अंक आएं तो माता-पिता चिंतित, स्कूल में शिकायत हो जाए तो माता-पिता सफाई देने पहुंच जाते हैं।

यहां तक कि कई बार बच्चे की गलती को स्वीकार करने के बजाय शिक्षक को ही कठघरे में खड़ा कर दिया जाता है।

बच्चे को अपनी गलती का एहसास कराने के बजाय उसके बचाव में तर्क खोजे जाने लगते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चा धीरे-धीरे यह समझने लगता है कि गलती उसकी हो सकती है, लेकिन उसका परिणाम भुगतने की जिम्मेदारी किसी और की है।

यह प्रवृत्ति भविष्य के लिए चिंताजनक है। क्योंकि जीवन में हर जगह माता-पिता उसके साथ खड़े नहीं होंगे। नौकरी, व्यवसाय, सामाजिक संबंध और पारिवारिक जीवन में उसे अपने निर्णयों और गलतियों की जिम्मेदारी स्वयं उठानी होगी।

अधिकार बहुत, कर्तव्य कम क्यों?-आज बच्चों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना अच्छी बात है, लेकिन क्या उन्हें उनके कर्तव्यों के प्रति भी उतना ही जागरूक किया जा रहा है?

बच्चों को अच्छी शिक्षा चाहिए, लेकिन क्या वे पढ़ाई के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझते हैं? उन्हें साफ-सुथरा कमरा चाहिए, लेकिन क्या वे अपने कमरे को व्यवस्थित रखते हैं? उन्हें सम्मान चाहिए, लेकिन क्या वे घर के बुजुर्गों और घरेलू सहायकों का सम्मान करना सीख रहे हैं?

परवरिश का अर्थ केवल बच्चों को अधिकार देना नहीं, बल्कि उन्हें कर्तव्यबोध से परिचित कराना भी है।

जिस घर में बच्चा केवल अपनी मांग रखना सीखता है और परिवार के प्रति अपनी भूमिका नहीं समझता, वहां व्यक्तित्व का संतुलित विकास अधूरा रह जाता है।

बच्चों को काम करने दीजिए, केवल आदेश देने वाला मत बनाइए-बच्चों को जिम्मेदार बनाने के लिए किसी बड़े उपदेश या विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। घर का सामान्य वातावरण ही उनके व्यक्तित्व की पाठशाला बन सकता है।

उन्हें अपने कपड़े व्यवस्थित करने दीजिए। अपनी किताबें और स्कूल बैग स्वयं तैयार करने दीजिए। घर के छोटे-मोटे कामों में उनकी भागीदारी सुनिश्चित कीजिए। बाजार से सामान लाने, खर्च का हिसाब रखने और समय का सदुपयोग करने जैसी छोटी जिम्मेदारियां दीजिए।

यदि बच्चा कोई गलती करता है तो हर बार उसके स्थान पर स्वयं काम पूरा करने के बजाय उसे सुधार का अवसर दीजिए।

यह भी जरूरी है कि माता-पिता बच्चों के सामने अपने व्यवहार से उदाहरण प्रस्तुत करें। यदि घर में पिता अपने माता-पिता का सम्मान नहीं करते, मां घरेलू काम करने वालों के साथ अपमानजनक व्यवहार करती हैं और परिवार के सदस्य एक-दूसरे की जिम्मेदारियों से बचते हैं, तो बच्चों से आदर्श व्यवहार की अपेक्षा करना व्यर्थ है।

बच्चे माता-पिता की बातें कम और उनके व्यवहार का अनुसरण अधिक करते हैं।

असफलता से बचाना नहीं, उससे सीखना सिखाइए-माता-पिता की सबसे बड़ी चिंता बच्चों का भविष्य है। इसी चिंता में वे कई बार बच्चों के रास्ते की हर बाधा स्वयं दूर करने लगते हैं। लेकिन हर बाधा हटाकर हम उनके लिए रास्ता आसान तो बना सकते हैं, जीवन आसान नहीं।

बच्चे को कभी असफल होने दीजिए। उसे अपनी गलती से सीखने दीजिए। उसे समझने दीजिए कि सफलता केवल प्रतिभा से नहीं, बल्कि निरंतर प्रयास, अनुशासन और धैर्य से प्राप्त होती है।

जिस बच्चे ने बचपन में अपनी छोटी जिम्मेदारियां निभाना सीखा है, वही आगे चलकर बड़ी जिम्मेदारियों का निर्वहन कर पाता है।

अंत में... परवरिश का अर्थ सुविधाएं देना नहीं, संस्कार देना है-माता-पिता अपने बच्चों के लिए बेहतर जीवन चाहते हैं। यह स्वाभाविक भी है। लेकिन बेहतर जीवन का अर्थ केवल बड़ा घर, महंगा स्कूल, ऊंची डिग्री और शानदार नौकरी नहीं है। बेहतर जीवन का अर्थ है ऐसा व्यक्तित्व, जो परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ढाल सके, अपनी जिम्मेदारियों को समझे, दूसरों का सम्मान करे और कठिन समय में अपने निर्णय स्वयं ले सके।

हमें यह समझना होगा कि बच्चों के लिए हर काम स्वयं कर देना प्रेम नहीं, कभी-कभी उनकी क्षमताओं पर अविश्वास भी बन जाता है।

उन्हें उंगली पकड़कर चलना सिखाइए, लेकिन हमेशा उंगली पकड़कर मत चलाइए। उन्हें उड़ने के लिए पंख दीजिए, लेकिन हर बार गिरने से बचाने के लिए उनके पंख मत समेटिए।

क्योंकि माता-पिता की असली सफलता यह नहीं कि उनके बच्चों को जीवन में कभी किसी चीज की कमी न हो, बल्कि यह है कि जब जीवन में कोई सहारा न मिले, तब भी उनके बच्चे अपने विवेक, परिश्रम और आत्मविश्वास के बल पर आगे बढ़ सकें।

आखिर बच्चों को विरासत में केवल संपत्ति नहीं, जिम्मेदारी निभाने की क्षमता भी मिलनी चाहिए।

बच्चों के लिए रास्ते बनाइए, लेकिन उन्हें उन रास्तों पर चलना भी सिखाइए। यही परवरिश है, यही संस्कार हैं और यही भविष्य की सबसे बड़ी पूंजी है।

मुकेश कुमार बिस्सा
जैसलमेर